[२०२२] ४ एस. सी. आर. १२८

कर्नाटक राज्य तथा अन्य

वि.

जी. रामनारायण जोशी

(२०२२ की सिविल अपील संख्या ४११७)

१७ मई, २०२२

[न्यायाधिपति एल. नागेश्वर राव और ए. एस. बोपन्ना.]

कर्नाटक भू- राजस्व नियम, १९६६: आर. ११९ (२) -बकाया राशि के भुगतान पर समपहृत अधिभोग या हस्तांतरित होल्डिंग की पुनस्थापना-वर्ष १८८७ में प्रत्यर्थी के पूर्वजों द्वारा सार्वजनिक नीलामी में क्रय गई -वर्ष १८९२ में भू-राजस्व का भुगतान न करने पर राज्य शासन द्वारा उक्त सम्पत्ति समपहृत कर ली गयी थी, यद्यपि प्रत्यर्थी का आधिपत्य बना रहा-वर्ष १९९४ में शासन द्वारा कुछ भूमि वन-विभाग को हस्तांतरित कर दी गयी जिसमें विवाराधीन भूमि उस भूमि का हिस्सा थी- वर्ष २०००, में शासन द्वारा उन जमीनों को छोड़कर जिनका शासन द्वारा अन्यथा निराकरण किया है, समपहृत सम्पत्ति के पुनस्थापन हेतु धारा ११९(२) में संशोधन किया गया- प्रत्यर्थी द्वारा आवेदन अंतर्गत ११९-(२) प्रस्तुत।- हालांकि,आवेदन पर विचार नहीं किया- प्रत्यर्थी द्वारा एकल न्यायाधीश के समक्ष रिट याचिका दायर की जो स्वीकार की गयी, जिसे खण्डपीठ द्वारा स्थिर रखा गया- अपील में अभिनिर्धारित किया- शासन का आदेश कर्नाटक वन अधिनियम के अन्तर्गत भूमि को आरक्षित वन क्षेत्र के रूप में अधिसूचित करने के लिये राजपत्र अधिसूचना की प्रकृति का नहीं था- आदेश की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि यदि भूमि की सार्वजनिक उददेश्य और स्वयं शासन के लिये आवश्यकता है तब राजस्व विभाग भूमि को भूमि बैंक से वापस प्राप्त कर सकता है-इसलिये जिस दिनांक को प्रत्यर्थी को पुनस्थापन के लिये आवेदन करने का अधिकार प्राप्त हुआ, सम्पत्ति की स्थिति वही थी और हस्तांतरण केवल शासन के राजस्व विभाग से उसी शासन के वन विभाग में था अर्थात एक विभाग से दूसरे विभाग- वन विभाग को सीमित उददेश्य हेतु राजस्व भूमि का संरक्षक बनाया गया था- इस प्रकार जिस दिनांक को प्रत्यर्थी ने आवेदन किया था उस दिन यह नहीं माना जा सकता है कि भूमि का निराकरण धारा ११९(२) के अनुसार किया गया- प्रत्यर्थी का आधिपत्य निरन्तर बना रहा और भूमि कभी भी वन विभाग को न ही सौंपी गयी या जप्त की गयी- उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश का आदेश जो अंतिमतः प्राप्त करता है वह उन दस्तावेजों को संदभिर्त करता है जो सम्पत्ति पर प्रत्यर्थी के आधिपत्य को दर्शित करते हैं- उच्च न्यायालय नें इस बात पर ध्यान दिया कि सम्पत्ति पर आधिपत्य पूर्ण अवधि में प्रत्यर्थी का रहा जो धारा ११९(२) के अंतर्गत पुनस्थापन का दावा करने की आवश्यकता को संतुष्ट करता है।

अपील खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा,

अभिनिर्धारित-- १.१ रिट याचिका क्रमांक.३६३२४/२००९ में अनुलग्न-ए के वर्ष १९१९ के दस्तावेज़ से ज्ञात होता है कि संपत्ति मूल रूप से बी. जे. के. नाम पर निजी स्वामित्व वाली संपत्ति थी, जिसके

अन्तर्गत प्रत्यर्थी संपत्ति पर अपना अधिकार और स्वामित्व का दावा कर रहा है। सम्पत्ति प्रत्यर्थी के पूर्वजों द्वारा सार्वजनिक नीलामी में क्रय की गई थी, जो भू-राजस्व का भुगतान न करने के कारण दिनांक २३.०८.१८९२ को शासन द्वारा समपहृत कर ली गयी थी। मामले का एक पहलू यह है कि प्रत्यर्थी के पूर्वाधिकारी का आधिपत्य सम्पत्ति में बना रहा है, जिसके उपरान्त प्रत्यर्थी को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उस पहलू पर, प्रधिकारी और उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित तथ्य का निष्कर्ष प्रासंगिक होगा, क्योंकि यह वर्तमान प्रकृति की याचिका में संविधान के अनुच्छेद १३६ के अन्तर्गत सीमित दायरे में पुनर्मूल्यांकन के लिए खुला नहीं होगा। [पैरा ९] [१३६-डी-एफ]

१.२ ०८.०९.२००० से प्रतिस्थापन के माध्यम से उप-नियम (२) में किये संशोधन का अंतिम प्रभाव यह है कि- प्रतिस्थापन की दिनांक से एक वर्ष के भीतर आवेदन दाखिल करना आवश्यक था, जिसे प्रत्यर्थी ने दिनांक ३०.०९.२००० और दिनांक ०५.१०.२००० को दायर किया था, जिसमें पुनस्थापन की मांग की गई थी। [पैरा ११] [१३७-ई]

१.३ विचाराधीन सम्पत्ति कुल २.५८ लाख हेक्टेयर का एक हिस्सा थी। जिसे शासन के आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के माध्यम से भूमि बैंक के गठन के लिए वन विभाग को हस्तांतरित किया गया था। [पैरा १२] [१३७-एफ]

१.४ अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रत्यर्थी को पुनस्थापन की मांग करने का अधिकार उपलब्ध नहीं था क्योंकि शासन के आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के अनुसार वन विभाग को भूमि हस्तांतरित करना समपहृत भूमि का निराकरण होना माना जावेगा और उप-नियम (२) "अन्यथा निराकृत की गई" भूमि को पुनस्थापना के लिए विचार किए जाने से अपवर्जित करता है। शासन के आदेश के अवलोकन से दर्शित होता है कि कर्नाटक वन अधिनियम के अन्तर्गत भूमि को "आरक्षित वन" या ऐंसे अन्य वन क्षेत्र के रूप में अधिसूचित करने की शक्ति का आवहन करने वाली राजपत्र अधिसूचना की प्रकृति में नहीं है। दूसरी ओर शासन के निर्णय से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि भूमि को "सी" और "डी" श्रेणी की भूमि के रूप में जारी रखा जायेगा जो कि राजस्व भूमि का एक वर्गीकरण है। वास्तव में शासन का आदेश निर्दिष्ट करता है कि यह कहते हुए कोई अधिसूचना जारी नहीं की जा सकती है कि ये भूमि वन अधिनियम के अन्तर्गत वन के रूप में आरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि एकमात्र उददेश्य वनरोपण को प्रोत्साहित करना और शासन में निहित भूमि की सुरक्षा करना है, लेकिन राजस्व भूमि के रूप में शासन को उपलब्ध रहना जारी रहे। उक्त आदेश की प्रस्तावना से स्पष्ट है जो निर्दिष्ट करता है कि यदि भूमि की आवश्यकता सार्वजनिक उददेश्य के लिये है और स्वयं शासन के लिये आवश्यक है तो राजस्व विभाग भूमि बैंक से इस भूमि को वापस ले सकता है इसलिये उस दिनांक को जब प्रत्यर्थी को पुनस्थापन का आवेदन करने का अधिकार प्राप्त हुआ सम्पत्ति की स्थिति वही थी और हस्तांतरण केवल शासन के राजस्व विभाग से उसी शासन के वन विभाग में था अर्थात एक शाखा से दूसरी शाखा तक। इसलिये स्थिति यह थी कि वन विभाग को एक सीमित उददेश्य के लिये राजस्व भूमि का "संरक्षक" बनाया गया था। इस प्रकार जिस

दिनांक को प्रत्यर्थी ने आवेदन किया था उस दिनांक को यह नहीं माना जा सकता है कि विचाराधीन भूमि का निराकरण नियम १९६६ के नियम ११९ के उपनियम (२) के अंतर्गत किया गया था ।[पैरा १३] [१३८-डी-एच; १३९-ए-बी]

१.५ इसके अतिरिक्त, जैसा कि उल्लेख किया गया है, न तो उस अवधि में समपहरण किया गया था और न ही उस समय जब प्रत्यर्थी की संपत्ति को कार्यकारी आदेश द्वारा वन विभाग को प्रत्यर्पित किया गया था, क्या यह दर्शित करने के लिये कोई कार्यवाही है कि प्रत्यर्थी या उसके पूर्ववर्ती को बेदखल कर दिया गया था ? एवं रिक्त आधिपत्य वन विभाग को प्रदान किया गया था। उक्त परिस्थिति में, यदि आधिपत्य प्रत्यर्थी के पास बना रहा था, तो प्रत्यर्थी पुनस्थापना के लिए अपने आवेदन पर विचार करने का अधिकारी था। इसके अतिरिक्त, यद्यपि प्रत्यर्थी के बारे में बहुत कुछ कहा गया है कि वह रिट याचिका क्रमांक १०७८६/२००६ दिनांक २०.०७.१९९४ में शासकीय आदेश पर चुनौती देने के अपने प्रयास में असफल रहा है, किन्तु उससे स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, शासकीय आदेश भूमि के एक बड़े हिस्से के संबंध में एक सामान्य आदेश था। शासकीय आदेश को चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वन विभाग को केवल 'संरक्षक' बनाया गया था, और प्रत्यर्थी की संपत्ति भी उसमें निहित थी, लेकिन समपहरण करना रह गया था जो अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के अधीन पुनस्थापित करने योग्य थी। प्रत्यर्थी को अपना अधिकार स्थापित करना था, जिस स्थिति में उसके आवेदन पर विचार करने पर प्रत्यर्थी की संपत्ति विधि-अनुसार पुनस्थापित हो जाएगी, जो उसके पश्चात शासकीय आदेश का हिस्सा नहीं रहेगी और वन विभाग न तो इस पर आपत्ति कर सकता है और न ही इसके आधिपत्य का दावा कर सकता है। उक्त प्रक्रिया का पालन करने और अपने आवेदन पर विचार की प्रतीक्षा करने के बजाय, प्रत्यर्थी ने वास्तव में 'घोड़े के सामने गाड़ी' रख दी और उसको चुनौती देने में असफल रहा जो अप्रासंगिक है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने किसी भी स्थिति में प्रत्यर्थी के लिए उपायुक्त के समक्ष अपना निदान करने के लिए खुला छोड़ दिया था, जिसका उपयोग किया गया है। [पैरा १४] [१३९-सी-जी]

१.६ आदेश के निष्कर्ष के अवलोकन से दर्शित है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उन दस्तावेजों पर ध्यान दिया जो प्रत्यर्थी का संपत्ति पर आधिपत्य होने का संकेत देते हैं। उक्त आदेश अंतिम रूप ले चुका है। उक्त आदेश की पृष्ठभूमि में ही उपायुक्त द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता थी। हालाँकि विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त आदेश को अंतिम रूप मिल गया था, लेकिन वन विभाग ने विधिक प्रक्रिया और इसमें निहित बारीकियों की उपेक्षा करते हुए, त्रुटिपूर्ण रूप से प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया तथा अतिरिक्त मुख्य वन संरक्षक द्वारा प्रत्यर्थी के विरूद्ध पारित एक आदेश दिनांक १९.०८.२०१३ के आधार पर दिनांक १६.०९.२०१३ को संचार जारी किया। जिसके कारण रिट याचिका क्रमांक ४६००३/२०१३ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) दाखिल करना आवश्यक हो गया। उक्त रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार हेतु सुसंगत प्रश्नों को निर्धारित कर विस्तृत विचार किया गया था। आदेश के दौरान विद्वान एकल न्यायाधीश ने वन विभाग द्वारा जारी किए गए नोटिस पर

ध्यान दिया और ऐसा करते समय तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक ११.१०.२०१० जो भूमि प्रत्यर्थी के आधिपत्य में होना प्रकट करती है तथा पूर्व रिट याचिका में समन्वित पीठ द्वारा किए गए उस पहलू पर विस्तृत विचार किया है। तदनुसार वन विभाग की कार्रवाई को अस्वीकार्य माना गया। उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश नें रिट याचिका को स्वीकार किया तथा विवादित संचार एवं आदेश को खारिज कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप भूमि के स्वामित्व को पुनस्थापित करने के लिए निर्देश जारी किया गया था। [पैरा १६] [१४१-सी-जी]

१.७ उस पृष्टभूमि में खण्डपीठ नें मामले के इन सभी पहलुओं पर विचार किया था। भूमि बैंक को 'सी' और 'डी' श्रेणी की भूमि के रूप में बनाए रखने के लिए हस्तांतरण की प्रकृति को खण्ड-पीठ द्वारा ध्यान दिया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि भूमि को आरक्षित वन के रूप में अधिसूचित नहीं किया गया था। वन-विभाग को हस्तांतरित भूमि पर पर्याप्त वृक्षों की वृद्धि हुई है जिस सम्पत्ति पर प्रत्यर्थी दावा करता है उस पर आज के परिवेश में विचार नहीं किया जा सकता। यद्यपि भूमि एक कार्यपालक आदेश द्वारा वन विभाग को प्रदान की गई थी लेकिन तथ्यान्वेषण दर्शित करता है कि प्रत्यर्थी आधिपत्य में बना रहा तथा कॉफी और सुपाड़ी के बागान विकसित किये जिसके लिये किसी भी स्थिति में वृक्षों के विकास की आवश्यकता होगी। प्रत्यर्थी को वर्ष २००० में पुनस्थापन मांग करने का जो अधिकार प्राप्त हुआ, वह शासन आदेश वर्ष १९९४ से लगभग ०६ वर्ष की अवधि के भीतर था। ऐसी स्थिति में वन विभाग पूर्व के आदेशों को ध्यान में रखे बिना वर्तमान स्थिति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। [पैरा १७] [१४१-जी-एच; १४२-ए-सी]

१.८ इस परिस्थिति में, उच्च न्यायालय ने विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि सम्पत्ति का आधिपत्य सम्पूर्ण अवधि में प्रत्यर्थी के पास रहा, जो नियम १९६६ के नियम ११९ के उप-नियम (२) के अन्तर्गत पुनस्थापना के दावे करने की आवश्यकता को संतुष्ट करता है। जब उस आशय का कोई तथ्यात्मक निष्कर्ष दिया जाता है, तो यह वर्तमान प्रकृति में इस न्यायालय के लिए उपलब्ध सीमित दायरे में विचार के लिए उत्पन्न नहीं होगा। [पैरा १८] [१४२-डी]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल अपील क्रमांक- ४१७/ २०२२

कर्नाटक उच्च न्यायालय, बेंगलुरु की रिट अपील क्रमांक २३१९/ २०१८ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक १७.०७.२०१९ एवम रिट याचिका क्रमांक ४६००३/२०१३ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में पारित आदेश दिनांक १३.०९.२०१७ से उत्पन्न।

निखिल गोयल, ए. ए. जी., वी. एन. रघुपति,अपीलार्थियों की ओर से अधिवक्ता।

राघवेंद्र एस. श्रीवत्स, मनमोहन पी. एन., वेंकिता सुब्रमण्यम टी. आर., लिखी चंद बोन्सले, सुश्री कोमल मुंधरा, प्रत्याथियों की ओर से अधिवक्ता।

कर्नाटक और ओआरएस का राज्य। वी. जी. रामनारायण जोशी

न्यायालय द्ववारा निर्णय सुनाया गया
न्यायाधिपति ए. एस. बोपन्ना,

१. अनुमति प्रदान की गयी ।

२. यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय बैंगलुरू द्वारा रिट अपील संख्या क्रमांक .२३१९/२०२२ (केएलआर-आरइएस) में पारित निर्णय दिनांक १७.०७.२०१९ के विरूद्ध प्रस्तुत की गयी है। उक्त निर्णय के माध्यम से, खंड पीठ ने अपीलार्थियों द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया। खण्ड-पीठ के समक्ष अंतर न्यायालय अपील अपीलार्थियों द्वारा दायर की गई थी, जिसमें उस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका क्रमांक ४६००३/२०१३ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में पारित दिनांक १३.०९.२०१७ को चुनौती दी गयी- विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस मामलें के प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया था तथा अनुलग्नक एम और एन में आक्षेपित संचार को खारिज कर दिया था। निर्णायानुसार अपीलार्थियों को प्रत्यर्थी की भूमि को वापस लेने का निर्देश जारी किया गया था जो वन विभाग को हस्तांतरित कर दी गयी थी और कर्नाटक भू-राजस्व नियम, १९६६ (संक्षेप में, 'नियम १९६६') के नियम ११९ के उप-नियम (२) के संदर्भ में प्रत्यर्थी को पुनस्थापित कर दिया गया था।

३. इस अपील के निराकरण के लिये ध्यान योग्य संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि- प्रत्यर्थी का दावा है कि उसने होरानाडू गांव, कासाबा होबली, मुदिगेरे तालुक, जिला चिकमगलुरु में स्थित सर्वेक्षण क्रमांक १७० रकबा ४५.०१ एकड की सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त किया । उक्त संपत्ति उसके पूर्वजों, होरनाडु गांव के वेंकटसुब्बा जोइस के बेटे भीम जोइस द्वारा दिनांक १०.१२.१८८७ को आयोजित एक सार्वजनिक नीलामी में क्रय की गई थी। प्रत्यर्थी के पूर्वज और उसके बाद, प्रत्यर्थी उक्त संपत्ति का उत्तराधिकारी बना, संपत्ति के निर्बाध आधिपत्य में बने रहने का दावा करता है। हालाँकि, भू-राजस्व का भुगतान नहीं किए जाने के कारण,१८९२ के दौरान संपत्ति को शासन द्वारा समपहृत कर लिया गया था। हालाँकि यह स्थिति थी, लेकिन समपहरण होने के उपरान्त भी संपत्ति परिवार के आधिपत्य और उपभोग में बनी रही और वे इसका उपभोग करते रहे। इस आशय से, वर्ष १९१९ के सर्वेक्षण क्रमांक.१७० (पुराना सर्वेक्षण क्रमांक.१३२) के खेतवाड़ उद्धरण रिट याचिका में प्रस्तुत किया गया और प्रत्यर्थी द्वारा उस पर निर्भर किया गया।

४. जब यह स्थिति थी, अधिसूचना क्रमांक आर. डी. ५० एल. जी. पी. ९६ दिनांक ०७.०९.२००० के द्वारा शासन ने समपहरण की गई संपत्ति की पुनस्थापना के लिए प्रावधान करने वाले नियम १९६६ के नियम ११९ में उप-नियम(२) में संशोधन किया कि यदि ऐसा आवेदन संशोधन प्रारम्भ होने की दिनांक से एक वर्ष के भीतर की अवधि में प्रस्तुत किया जाता है अर्थात दिनांक १८.०४.२००० से एक वर्ष के भीतर उक्त लाभ उस नियम के उप-नियम (१) के अन्तर्गत अनुमत अवधि के अवसाद के

बावजूद दिया गया था। उक्त संशोधन का लाभ लेते हुए प्रत्यर्थी ने पुनस्थापना की मांग हेतु दिनांक ३०.०९.२००० और ०५.१०.२००० पर आवेदन दायर किए, जो निर्धारित समय-अवधि के भीतर थे। जब उक्त आवेदनों पर विचार नहीं किया गया, तो प्रत्यर्थी नें उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका क्रमांक.११३३४/२००७ में आवेदनों पर विचार करने के लिए निर्देश की मांग की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक २४.०७.२००७ को प्रत्यर्थी द्ववारा दायर आवेदनों का निराकरण करने के लिये उपायुक्त को निर्देशित कर रिट याचिका का निराकरण किया।

५. विचार करने के उपरान्त, आवेदनों को आदेश दिनांक २७.११.२००९ द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। प्रत्यर्थी नें अस्वीकृति से व्यथित होकर डब्ल्यू. पी. क्रमांक .३६३२४/२००९ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में एक और रिट याचिका दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक २६.०६.२०१२ को रिट याचिका को स्वीकार करते हुए आदेश दिनांक २७.११.२००९ को खारिज कर दिया और उपायुक्त को सहायक आयुक्त और तहसीलदार की रिपोर्टों के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक २६.०६.२०१२ को पारित आदेश में निहित टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए गुण-दोष के आधार पर आवेदनों को नए सिरे से विचार करने का निर्देश दिया गया। हालाँकि, जारी किए गए निर्देशों के विपरीत, प्रत्यर्थी के दावे को अतिरिक्त मुख्य वन संरक्षक द्वारा पारित आदेश दिनांक १९.०८.२०१३ द्वारा अस्वीकार दिया गया था। वन विभाग द्ववारा उक्त आदेश के आधार पर दिनांक १६.०९.२०१३ सूचना भी जारी की गयी, जिसको डब्ल्यू. पी. क्रमांक ४६००३/२०१३ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में चुनौती दी गयी। विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले के इन सभी पहलुओं पर ध्यान देते हुए उपरोक्त उल्लेखित आदेश दिनांक १३.०९.२०१७ द्वारा रिट याचिका को स्वीकार कर लिया। उक्त आदेश के विरूद्ध अपीलार्थियों ने अंतर-न्यायालय रिट अपील क्रमांक २३१९/२०१८(के. एल. आर.-आर. ई. एस.) प्रस्तुत की थी जिसे आदेश दिनांक १७.०७.२००९ द्वारा खारिज कर दिया गया था।

६. वर्तमान अपील के तथ्यात्मक वर्णन की पृष्ठभूमि में, श्री वी. एन. रघुपति के साथ श्री निखिल गोयल, ए. ए. जी. तथा अपीलार्थियों की ओर से, श्री राघवेंद्र एस. श्रीवत्स के साथ श्री पी. एन. मनमोहन को सुना गया और अपील-पत्रों का अवलोकन किया गया ।

७. अपीलार्थियों की ओर से यह तर्क है कि भूमि को वर्ष १८९२ में समपहरण कर लिया गया था और इस प्रकार नियम १९६६ के नियम ११९ के अन्तर्गत दायर आवेदन सुनवायी योग्य नहीं है। यह मान भी लिया जाए कि संशोधित उपनियम उचित है वही निर्दिष्ट करता है कि आवेदन पर केवल उस भूमि के संबंध में विचार किया जायेगा जिसका अन्यथा निराकरण नहीं किया गया है । यह तर्क किया गया है कि वर्तमान मामले में कर्नाटक शासन ने आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के माध्यम से भूमि-बैंक के गठन के लिये २.५८ लाख हैक्टेयर "सी" और "डी" श्रेणी की भूमि वन-विभाग को हस्तांतरित कर दी थी जिसमें इस कार्यवाही की विचाराधीन भूमि भी शामिल थी। यह तर्क किया गया है कि भूमि का 'निराकरण' किया गया था और इसलिए नियम १९६६ के नियम ११९ के उप-नियम (२) के अन्तर्गत पुनस्थापना पर विचार करने के लिए उपलब्ध नहीं थी । यह अपीलार्थियों का

मामला है कि जी. ओ. दिनांक २०.०७.१९९४ जिसके द्वारा भूमि को वन विभाग को हस्तांतरित किया गया था, वास्तव में प्रत्यर्थी द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका क्रमांक १०७८६/ २००६ (के. एल. आर. आर. ई. एस.) में चुनौती दी गयी थी, लेकिन विद्वान एकल न्यायाधीश ने उक्त अधिसूचना में हस्तक्षेप किए बिना दिनांक ०८.०८.२००६ को रिट याचिका का निराकरण कर दिया। उस परिस्थिति में वन विभाग को पूर्व में ही हस्तांतरित की जा चुकी भूमि के संबंध में पुनस्थापना के लिये दायर आवेदन स्थिर रखने योग्य नहीं था और सक्षम प्राधिकारी ने आवेदन को ठीक ही खारिज किया था जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था। यद्यपि रिट याचिका क्रमांक ४६००३/२०१३ में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लाभ प्रदान किया गया था, इस विवाद पर सारतः पूर्व में ही रिट याचिका क्रमांक ३६३२४/२००९ में विचार किया गया था जिसमें पुनर्विचार का निर्देश दिया गया था। विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता उसमें पारित आदेश का उल्लेख करते हुए यह तर्क देना चाहेंगे कि रिट याचिका क्रमांक ११३३४/२०१७ में आदेश दिनांक २०-०७-१९९४ के कारण उपायुक्त की स्थिति के संबंध में की गई टिप्पणियां जो प्रत्यर्थी के पक्ष में विचार होना चाहिए था। इस संदर्भ में यह तर्क दिया गया है कि जिन भूमि को शासन द्वारा समपहृत कर लिया गया था और वन विभाग को हस्तांतरित किया जा रहा था, वे प्रत्यर्थी के आधिपत्य में नहीं थीं।

८. प्रत्यर्थी के विद्वान अभिभाषक ने खण्ड-पीठ द्वारा पारित आदेश को बनाए रखने की मांग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश, के साथ ही पूर्व रिट याचिका में दिये गए आदेश का भी संदर्भ दिया है। इस संदर्भ में, यह तर्क दिया गया है कि विचाराधीन संपत्ति वह संपत्ति है जिसे प्रत्यर्थी के पूर्वजों ने नीलामी में क्रय किया था। इसलिए समपहरण की दिनांक पर, संपत्ति एक निजी स्वामित्व वाली भूमि थी और समपहरण, बकाया भू-राजस्व का भुगतान न करने के कारण हुआ था। हालाँकि, समपहरण विधि प्रवर्तन के अन्तर्गत हुआ था, लेकिन वास्तव में अपीलार्थी के पूर्वजों का आधिपत्य बना रहा और उसे उसका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। विचाराधीन संपत्ति पर वृक्षारोपण के रूप में कृषि की जा रही है। प्रत्यर्थी का घर और एक मंदिर भी वहीं स्थित है। शासकीय आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के होते हुए भी प्रत्यर्थी संपत्ति के आधिपत्य और कृषि में बना रहा। प्रत्यर्थी के दावे पर विवाद करने के लिए अभिलेख पर कोई अन्य विवादास्पद सामग्री उपलब्ध नहीं है। जब यह स्थिति थी, तो नियम १९६६ के नियम ११९ के उप-नियम (२) के संशोधन, प्रभावी दिनांक ०७.०९.२००० का लाभ प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त किया गया और एक आवेदन पुर्नस्थापना के लिये उपनियम के अन्तर्गत प्रदान की गयी समय-सीमा के भीतर दिनांक ३०.०९.२००० एवं ०५.१०.२००० को किया गया था । यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय ने मामले के इन सभी पहलुओं को तथा इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि तहसीलदार और सहायक आयुक्त द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदनों ने यह स्थिति स्थापित की है कि प्रत्यर्थी का आधिपत्य बना हुआ है, राहत प्रदान की है जिसमें हस्तक्षेप किये जाने की आवश्यकता नहीं है।

९. तर्कों के आलोक में, प्रत्यर्थी द्वारा उल्लेखित पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका क्रमांक ३६३२४/२००९ के अनुलग्नक ए के वर्ष १९१९ के दस्तावेज से ज्ञात होता है कि सम्पत्ति मूल रूप से

भीमा जोइस के नाम की एक निजी स्वामित्व की सम्पत्ति थी, जिसके अन्तर्गत प्रत्यर्थी सम्पत्ति पर अधिकार एवं स्वामित्व का दावा कर रहा है। यद्यपि, निर्विवाद पहलू यह है कि- जिस सम्पत्ति के सम्बन्ध में यह कहा जा रहा है कि प्रत्यर्थी के पूर्वजों नें सार्वजनिक नीलामी में क्रय किया था, उसे बकाया भू-राजस्व का भुगतान न करने के कारण दिनांक २३.०८.१८९२ में शासन द्वारा समपहरण कर लिया गया था। इस मामले का एक पहलू यह है कि प्रत्यर्थी के पूर्ववर्ती ने संपत्ति के आधिपत्य में रहना जारी रखा और उसके पश्चात प्रत्यर्थी को उसका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। उस पहलू पर, सक्षम प्राधिकारी द्वारा दर्ज और उच्च न्यायालय द्वारा नोट किए गए तथ्य का निष्कर्ष प्रासंगिक होगा क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत सीमित दायरे में पुनर्मूल्यांकन के लिए खुला नहीं होगा। मामले का दूसरा पहलू प्रत्यर्थी को पुनस्थापना की मांग करने के लिए उपलब्ध अधिकार के बारे में है और इस संबंध में कि क्या ऐसा अधिकार प्रत्यर्थी के पक्ष में मौजूद था।

१०. पुनस्थापन की मांग करने का अधिकार नियम १९६६ के नियम ११९ के उपनियम (२) में है जो इस प्रकार है:

"११९- देय बकाया के भुगतान पर ज़ब्त अधिभोग या हस्तांतरित होल्डिंग की पुनस्थापना-

(१) उपायुक्त किसी भी समपहृत अधिभोग या हस्तांतरित होल्डिंग को पुनस्थापित कर सकता है, जिसे शासन के कारण क्रय किया गया है और जिसका निराकरण अन्यथा नहीं किया गया है, समपहरण की दिनांक से तीन साल के भीतर उस बकाया राशि का भुगतान करे, जिसके संबंध में समपहरण किया गया, साथ ही समपहरण की दिनांक से पुनस्थापन की दिनांक तक, भू-राजस्व तथा अब तक वसूली एवं आगे कार्यवाहियों में किये गये व्ययों का भुगतान करे, जैसा कि आयुक्त द्वारा बाध्य किया जा सकता है।

(२) कर्नाटक भू- राजस्व (संशोधन) नियम, २००१ के प्रारंभ होने की दिनांक से एक वर्ष से अधिक की अवधि के दौरान, उपायुक्त, उपनियम (१) में निर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के बावजूद, किसी भी समपहृत अधिभोग को पुनस्थापित कर सकता है या हस्तांतरित होल्डिंग जो शासन को बकाया होने के कारण क्रय की गई है और जिसका अन्यथा निराकरण नहीं किया गया है, उस व्यक्ति को, जिसे ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले ऐसे अधिभोग या होल्डिंग से बेदखल नहीं किया गया है, बकाया राशि के भुगतान पर जिसके संबंध में समपहरण किया गया, साथ ही साथ समपहरण की दिनांक से पुनस्थापन की दिनांक तक होल्डिंग के संबंध में भू-राजस्व की राशि तथा वसूली की गई थी, जब्ती की तारीख से बहाली की तारीख तक जोत के संबंध में भू-राजस्व की राशि और वसूली एवं आगे कार्यवाहियों में अब तक किए गए व्ययों, जैसा कि उपायुक्त द्वारा तय किया गया।"

११. दिनांक ०८.०९.२००० से प्रतिस्थापन के माध्यम से उप-नियम (२) में किये संशोधन का अंतिम प्रभाव यह है कि प्रतिस्थापन की दिनांक से एक वर्ष के भीतर एक आवेदन दाखिल करना आवश्यक

था, जिसे पुनस्थापना की मांग करते हुए दिनांक ३०.०९.२००० एवं ०८.१०.२००० को प्रत्यर्थी नें दायर किया।

१२. इस पर ध्यान देने के पश्चात यह भी अवलोकनीय है कि जो संपत्ति इस कार्यवाही का विषय है, वह भी कुल २.५८ लाख हेक्टेयर का हिस्सा थी, जो भूमि बैंक के गठन के लिये शासकीय आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के माध्यम से वन विभाग को हस्तांतरित कर दी गयी थी। उक्त शासकीय आदेश इस प्रकार है कि-

" शासन का आदेश संख्या.आरडी १०६ एलजीपी ८८,
बेंगलुरु दिनांक २०.०७.९४

प्रस्ताव की विस्तृत जांच के पश्चात शासन नें इस आदेश के साथ संलग्न परिशिष्ट में दिये गए कुल १,३१,८६६-६१ हैक्टेयर क्षेत्र को निम्नलिखित शर्तों के अधीन भूमि बैंक के गठन के लिये वन-विभाग को हस्तांतरित करने का आदेश जारी किया।

१. यदि भूमि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवश्यक है और स्वयं शासन के लिये भूमि की आवश्यकता हो तो राजस्व विभाग इस भूमि को भूमि बैंक से वापस ले सकता है।

२. हस्तांतरित भूमि को "सी" और "डी" श्रेणी की भूमि के रूप में जारी रखा जाना है। यह कहते हुए कोई अधिसूचना जारी नहीं की जा सकती है कि ये भूमि वन अधिनियम के अन्तर्गत वन के रूप में आरक्षित हैं।

३. वन विभाग से खनन गतिविधियों हेतु वन क्षेत्रों को मुक्त किये जाने के समय उसके मुआवजे के रूप में, नेदुथोपू की प्रभावशील राहत के लिये शासन भूमि-बैंक से "सी" और "डी" श्रेणी की भूमि को मुक्त कर सकती है, और इसे वन विभाग के लिये उपलब्ध करा सकती है।

आदेश द्वारा और के नाम पर
कर्नाटक के राज्यपाल,
जितेंद्र सिंह शासन के अवर सचिव
राजस्व विभाग "

१३. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता के इस तर्क पर विचार करने के लिये संबंधित नियम और शासकीय आदेश को ध्यान में रखना होगा कि शासकीय आदेश दिनांक २०.०७.१९९४ के उपरान्त से प्रत्यर्थी को पुनर्स्थापना की मांग करने का अधिकार उपलब्ध नहीं था क्योंकि वन-विभाग को हस्तांतरित भूमि, समपहरण की गयी भूमि के निराकरण के समान होगी एवं उपनियम (२) में "अन्यथा निराकरण की गई" भूमि को पुनर्स्थापना के लिए विचार करने से अपवर्जित किया गया है।

उक्त पृष्ठभूमि में, शासकीय आदेश के अवलोकन से दर्शित है कि यह भूमि को 'आरक्षित वन' या ऐंसे अन्य वनक्षेत्र के रूप में अधिसूचित करने के लिये कर्नाटक वन-अधिनियम के अन्तर्गत शक्ति का आह्वान करने वाली राजपत्र अधिसूचना की प्रकृति में नहीं है। दूसरी ओर, शासन का निर्णय स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि भूमि को 'सी' और 'डी' श्रेणी की भूमि के रूप में जारी रखा जाना है जो कि राजस्व भूमि का एक वर्गीकरण है। वास्तव में, शासकीय आदेश निर्दिष्ट करता है कि यह कहते हुए कोई अधिसूचना जारी नहीं की जा सकती है कि ये भूमि वन अधिनियम के अन्तर्गत वन के रूप में आरक्षित हैं। एकमात्र उद्देश्य वनरोपण को प्रोत्साहित करना और शासन में निहित भूमि की रक्षा करना प्रतीत होता है, लेकिन शासन को राजस्व भूमि के रूप में उपलब्ध रहना जारी रहे । यह उक्त आदेश की प्रस्तावना से स्पष्ट है जिसमें निर्दिष्ट किया गया है कि यदि भूमि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए और स्वयं शासन के लिए आवश्यक है, तो राजस्व विभाग इस भूमि को भूमि बैंक से वापस ले सकता है। इसलिए, उस दिनांक को जब प्रत्यर्थी को पुनर्स्थापना की मांग करने हेतु आवेदन करने का अधिकार प्राप्त हुआ, संपत्ति की स्थिति वही थी और हस्तांतरण केवल राजस्व विभाग से उसी शासन के वन-विभाग में हुआ था अर्थात एक शाखा से दूसरी शाखा में। इसलिए स्थिति यह थी कि वन विभाग को एक सीमित उद्देश्य के लिए राजस्व भूमि का 'संरक्षक' बनाया गया था। इसलिए, जिस दिनांक को प्रत्यर्थी ने आवेदन किया था, उस दिनांक को यह नहीं माना जा सकता है कि विचाराधीन भूमि का निराकरण नियम १९६६ के नियम ११९ के उप-नियम (२) के अन्तर्गत किया गया था।

१४. इसके अतिरिक्त, जैसा कि उल्लेख किया गया है, न तो उस अवधि में समपहरण किया गया था और न ही उस समय जब प्रत्यर्थी की संपत्ति को कार्यकारी आदेश द्वारा वन विभाग को प्रत्यर्पित किया गया था, क्या यह दर्शित करने के लिये कोई कार्यवाही है कि प्रत्यर्थी या उसके पूर्ववर्ती को बेदखल कर दिया गया था ? एवं रिक्त आधिपत्य वन विभाग को प्रदान किया गया था। उक्त परिस्थिति में, यदि आधिपत्य प्रत्यर्थी के पास बना रहा था, तो प्रत्यर्थी पुनर्स्थापना के लिए अपने आवेदन पर विचार करने का अधिकारी था। इसके अतिरिक्त, यद्यपि प्रत्यर्थी के बारे में बहुत कुछ कहा गया है कि वह रिट याचिका क्रमांक.१०७८६/२००६ में दिनांक २०.०७.१९९४ के शासकीय आदेश को चुनौती देने के अपने प्रयास में असफल रहा है, किन्तु उससे स्थिति कोई परिवर्तन नहीं आता है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, शासकीय आदेश भूमि के एक बड़े हिस्से के संबंध में एक सामान्य आदेश था। शासकीय आदेश को चुनौती देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वन विभाग को केवल 'संरक्षक' बनाया गया था, और प्रत्यर्थी की संपत्ति भी उसमें निहित थी, लेकिन समपहरण की गई भूमि बनी रही जो अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करने के अधीन पुनर्स्थापित करने योग्य थी। प्रत्यर्थी को अपना अधिकार स्थापित करना था, जिस स्थिति में उसके आवेदन पर विचार करने पर प्रत्यर्थी की संपत्ति विधि-अनुसार पुनर्स्थापित हो जाएगी, जो उसके पश्चात शासकीय आदेश का हिस्सा नहीं रहेगी और वन विभाग न तो इस पर आपत्ति कर सकता है और न ही इसके आधिपत्य का दावा कर सकता है। उक्त प्रक्रिया का पालन करने और अपने आवेदन पर विचार की प्रतीक्षा करने के बजाय, प्रत्यर्थी ने वास्तव में 'घोड़े के सामने गाड़ी' रख दी और उसको चुनौती देने में

असफल रहा जो अप्रासंगिक है। एकल न्यायाधीश ने किसी भी स्थिति में प्रत्यर्थी के लिए उपायुक्त के समक्ष अपना निदान करने के लिए खुला छोड़ दिया था, जिसका उपयोग किया गया है।

१५. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, पारित आदेश पर विचार करने के पूर्व उच्च न्यायालय के समक्ष, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उपायुक्त द्वारा पुनर्विचार पूर्वनिर्धारित है और रिट याचिका क्रमांक.३६३२४/२००९ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) में दिनांक २६.०६.२०१२ के आदेश में निहित टिप्पणियों पर आधारित होना था, उक्त रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किये गए निष्कर्ष पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है कि-

" ११. जहाँ तक दूसरे आधार का संबंध है, वह प्राधिकरण के उस निष्कर्ष के विपरीत है जिसने आक्षेपित आदेश पारित किया था, अर्थात् अनुलग्नक- 'ई' एंड 'के' में दर्ज निष्कर्ष के विपरीत, जिसके अन्तर्गत प्रत्यर्थी क्रमांक.२ उपायुक्त द्वारा स्पष्ट रूप से स्वयं अभिनिर्धारित किया गया है कि विचाराधीन भूमि याचिकाकर्ता के आधिपत्य में है।

१२. उसी को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि "क्या याचिकाकर्ता नियम ११९ के उपनियम (२) के आधार पर भूमि के आधिपत्य में पुनस्थापित करने का अधिकारी है। जैसा कि श्री पाटिल विद्वान एच.सी.जी.पी ने सही कहा है कि विचाराधीन भूमि को शासन द्वारा शासकीय आदेश क्रमांक आरडी १०६ एलजीपी ८८ दिनांक २०.०७.१९९४ के अन्तर्गत शासन के विभिन्न विभागों में हस्तांतरित करने के लिये भूमि-बैंक में स्थानांतरित कर दिया गया। हालाँकि, वास्तव में विचाराधीन भूमि याचिकाकर्ता के आधिपत्य में बनी हुई है, जैसा कि प्रत्यर्थीगण द्वारा निरन्तर अभिनिर्धारित किया गया है, जिसमें प्रत्यर्थी क्रमांक २ प्राधिकरण भी निहित है जिसने विवादित आदेश पारित किया है। वास्तव में, नियम ११९ के उप-नियम (२) के अन्तर्गत एक आवेदन पर विचार करने के लिए मूलभूत मानदंडों में से एक यह है कि- आवेदक का भूमि पर आधिपत्य जारी रहना चाहिये, यद्यपि राजस्व का भुगतान न करने के कारण शासन द्वारा उक्त भूमि समपहृत कर ली। दूसरे शब्दों में आधिपत्य डायवर्ट नहीं किया जाना चाहिये था। इस प्रकार इस सम्बन्ध में निर्धारित मानदंड याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं प्रत्यर्थी प्राधिकरण के अनुसार भी विधिवत संतुष्ट किये गए हैं। हालाँकि, किसी भी तकनीकी दलील से बचने के लिये और स्पष्ट रूप से प्रचुर सावधानी के माध्यम से, प्रत्यर्थी क्रमांक.२ ने दिनांक २६.१२.२००० एवं दिनांक २३.०८.२००७ के संचार अनुलग्नक-ई और जे के द्वारा प्रत्यर्थी क्रमांक.१ शासन से उन आदेशों को खारिज करने का अनुरोध किया जिनके अन्तर्गत विचाराधीन भूमि का डायवर्जन किया गया अर्थात शासन आदेश दिनांक २०.०७.१९९४। प्रत्यर्थी क्रमांक १ शासन द्वारा कोई आदेश पारित किये जाने के अभाव में, प्रत्यर्थी क्रमांक.२ द्वारा याचिकाकर्ता के दावे का विचार करके कोई आदेश पारित नहीं किया जा सका । हालाँकि, उपायुक्त को ऐसी स्थिति में रखा गया था, जिसमें उन्हें इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका क्रमांक ११३३४/२००७ दिनांक २४.०७.२००७ में जारी निर्देश का अनुपालन करना पड रहा था जिसके अन्तर्गत निराकरण समय सीमा के भीतर करना था एवं अनुपालन न करने के परिणामस्वरूप उनके विरूद्ध कार्यवाही प्रारंभ हो

सकती थी और उन्हें अभी तक पत्र क्रमशः दिनांक २६.१२.२००० और २३.०८.२००७ अनुलग्न ई व जे के माध्यम से किये गए अनुरोध के लिये शासन से जवाब प्राप्त नहीं हुआ था। उक्त परिस्थिति में अन्य कोई विकल्प न होने से तथा प्रत्यर्थी क्रमांक १ शासन द्वारा दिनांक २०.०७.१९९४ के आदेश को प्रत्यहरित या खारिज करने का कोई आदेश पारित न होने के बावजूद उन्हें विवादित आदेश पारित करने के लिये विवश किया गया। आवेदनों को अस्वीकार करने के लिये प्रत्यर्थी क्रमांक.२ द्वारा बताए गए कारणों को उपरोक्त कराणों से इस न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता इसलिये विवादित आदेश स्थिर नहीं रखा जा सकता।"

१६. आदेश के निष्कर्ष के अवलोकन से दर्शित है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने उन दस्तावेजों पर ध्यान दिया जो प्रत्यर्थी का संपत्ति पर आधिपत्य होने का संकेत देते हैं। उक्त आदेश अंतिम रूप ले चुका है। यह उक्त आदेश की पृष्ठभूमि में ही उपायुक्त द्वारा पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता थी। हालाँकि विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त आदेश को अंतिम रूप मिल गया था, लेकिन वन विभाग ने विधिक प्रक्रिया और इसमें निहित बारीकियों की उपेक्षा करते हुए,त्रुटिपूर्ण रूप से प्रक्रिया में हस्तक्षेप किया तथा अतिरिक्त मुख्य वन संरक्षक द्वारा प्रत्यर्थी के विरूद्ध पारित एक आदेश दिनांक १९.०८.२०१३ के आधार पर दिनांक १६.०९.२०१३ को संचार जारी किया। जिसके कारण रिट याचिका क्रमांक.४६००३/२०१३ (के. एल. आर.-आर. ई. एस.) दाखिल करना आवश्यक हो गया। उक्त रिट याचिका में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विचार हेतु सुसंगत प्रश्नों को निर्धारित कर विस्तृत विचार किया गया था। आदेश के दौरान विद्वान एकल न्यायाधीश ने वन विभाग द्वारा जारी किए गए सूचना पर ध्यान दिया और ऐसा करते समय तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक ११.१०.२०१० जो भूमि प्रत्यर्थी के आधिपत्य में होना प्रकट करती है तथा पूर्व रिट याचिका में समन्वित पीठ द्वारा किए गए उस पहलू पर विस्तृत विचार किया है। तदनुसार, वन विभाग की कार्रवाई को अस्वीकार्य माना गया। उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को स्वीकार किया तथा विवादित संचार एवं आदेश को खारिज कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप भूमि के स्वामित्व को पुनस्थापित करने के लिए निर्देश जारी किया गया था।

१७. उस पृष्टभूमि में खण्डपीठ नें मामले के इन सभी पहलुओं पर विचार किया था। खण्ड-पीठ द्वारा भूमि बैंक को 'सी' और 'डी' श्रेणी की भूमि के रूप में बनाए रखने के लिए हस्तांतरण की प्रकृति को ध्यान दिया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि भूमि को आरक्षित वन के रूप में अधिसूचित नहीं किया गया था। वन-विभाग को हस्तांतरित भूमि पर पर्याप्त वृक्षों की वृद्धि हुई है जिस सम्पत्ति पर प्रत्यर्थी दावा करता है उस पर आज के परिवेश में विचार नहीं किया जा सकता। यद्यपि भूमि एक कार्यपालक आदेश द्वारा वन विभाग को प्रदान की गई थी लेकिन तथ्यान्वेषण दर्शित करता है कि प्रत्यर्थी आधिपत्य में बना रहा तथा कॉफी और सुपाडी के बागान विकसित किये जिसके लिये किसी भी स्थिति में वृक्षों के विकास की आवश्यकता होगी। प्रत्यर्थी को वर्ष २००० में पुनस्थापना की मांग करने का जो अधिकार प्राप्त हुआ, वह शासन आदेश वर्ष १९९४ से लगभग ०६

वर्ष की अवधि के भीतर था। ऐसी स्थिति में वन विभाग पूर्व के आदेशों को ध्यान में रखे बिना वर्तमान स्थिति में हस्तक्षेप नहीं करा जा सकता था।

१८. इस परिस्थिति में, उच्च न्यायालय ने विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि सम्पत्ति का आधिपत्य सम्पूर्ण अवधि में प्रत्यर्थी के पास रहा, जो नियम १९६६ के नियम ११९ के उप-नियम (२) के अन्तर्गत पुनस्थापना के दावे करने की आवश्यकता को संतुष्ट करता है। जब उस आशय का कोई तथ्यात्मक निष्कर्ष दिया जाता है, तो यह वर्तमान प्रकृति में इस न्यायालय के लिए उपलब्ध सीमित दायरे में विचार के लिए उत्पन्न नहीं होगा।

१९. उस दृष्टि से, अपील गुणहीन होने के कारण परिव्यय के संबंध में कोई आदेश किये बिना खारिज की जाती है।

२०. लंबित आवेदन, यदि कोई हो,तो निराकृत।

अनुवादक
सुश्री पूजा अहिरवार
द्वितीय व्यवहार न्यायाधीश कनिष्ठ खंड
जिला सागर म०प्र०